P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-4* ISSUE-1* April- 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

आधुनिक कहानियों में दलित चेतना के स्वर

अरुण कुमार
असिस्टेण्ट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय,
सम्भल, उ0प्र0

सारांश

व्यवस्था के भँवर में मानवता गोते लगाती रही, वर्ण, जाति, धर्म, क्षेत्र, एवं भाषा के आधार पर बनी हुई दरारें लोगों के दिलों में दूरियाँ बनाती रहीं। धार्मिक और सामाजिक कुव्यवस्थाओं की कठोर चक्की सदियों से मानवता का दलन करती रही। सतयुग, द्वापर, त्रेता से चलकर कलयुग तक का सफर इन्हीं शोषणों के मध्य व्यतीत होता गया। सदियाँ बीतती चली गयीं। भगवान राम, कृष्ण, एवं विष्णु के दस अवतारों का युग भी बीत गया। ईसा मसीह, भगवान बुद्ध, महावीर जैन, सन्त कबीर न जाने कितने महापुरुषों ने जन्म लिया। कहने को तो सब समस्त मानवता के कल्याणार्थ ही अवतरित हुए किन्तु उनकी दृष्टि कदाचित् समाज की परिधि पर कष्टकारी जीवन व्यतीत करने वाले दलित–शोषित एवं परित्यक्त लोगों तक नहीं पहुँच पायी, यदि पहुँची भी तो व्यवस्था के मकड़जाल को वे भी तोड़ने में असमर्थ रहे। बहिष्कृत जातियों, जन जातियों, स्त्रियों का दमन होता रहा। व्यवस्था के नेपथ्य में शोषण का स्वरूप बदलता रहा। किसी ने उनकी पीड़ा को महसूस नही किया, जिसने किया भी वह व्यवस्था के सम्मुख कुछ कर न सका। संवेदनहीन व्यवस्था ने उन्हें संरक्षण देने के स्थान पर उनका भरपूर शोषण ही किया। कभी वर्णों में शूद्र मानकर तो कभी समाज में परित्यक्त और अस्पृश्य मानकर, कभी धर्म का भय दिखाकर तो कभी आर्थिक आधार पर उनकी गरीबी, भुखमरी, एवं मजबूरी का फायदा उठाकर। रामराज्य में सर्वहित की परिकल्पना निहित है किन्तु वहाँ भी शूद्रों के लिये धार्मिक अनुष्ठानों में कोई जगह नहीं है। आधुनिक कहानीकारों ने इसी पीड़ा को अपनी कहानियों में चित्रित किया है। ओम प्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिषराय, सूरज पाल चौहान, डॉ0 सुशीला टाक भौरे, प्रेम कपाडिया, रत्नकुमार साभरिया, डॉ0 दयानन्द बटोही, रूपनारायण सोनकर, अजय नावरिया, डॉ0 कुसुम वियोगी, डॉ0 रजत रानी मीनू, मुकेश मानस, आदि ऐसे सशक्त दलित कहानीकार हैं जिन्होंने इस समस्या को पर्त–दर–पर्त अपनी कहानियों में चित्रित किया है।

मुख्य शब्द : दलित, संवेदना, बहिष्कृत, परित्यक्त, अस्पृश्य, रामराज्य, संस्कार, परम्पराएँ, सतयुग, द्वापर, त्रेता, कलियुग, पूँजीपति–सर्वहारा, प्रगतिवाद, दुर्धर्ष, कुव्यवस्था, बेदखली, वाह्याडम्बर, प्रत्यूषा, स्वाभिमान, दम्भ, मद, अहंकार, स्वार्थ, निःसृत, लोकतान्त्रिक, समतामूलक समाज।

प्रस्तावना

आधुनिक कहानियों में कहानी लेखकों ने ज्वलन्त सामाजिक समस्याओं को मुख्य विषय बनाया है इसमें वे सर्वसमाज– हित की बात करते हैं। प्राचीन कहानी की विषय वस्तु एवं कला की परिधि को तोड़ते हुए वर्तमान कहानीकारों ने दलित, बहिष्कृत एवं वंचित समाज से नायक–नायिका को लेते हैं और इसी माध्यम से इस समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण करते हैं। पहले की कहानियों में नायक–नायिका केवल कुलीन वर्ग से ही सम्बन्ध रखते थे। किन्तु कुछ सजग कहानीकारों ने इस परिधि को तोड़ते हुए सर्वसमाज की परिस्थितियों के चित्रण करने के बहाने दलित एवं परित्यक्त समाज को मुख्य धारा से जोड़ने के लिए उन्हें अपनी कहानियों में स्थान दिया और उन्हें नायक–नायिका के रुप में प्रस्तुत किया। आधुनिक कहानीकार इन्हीं दलित नायक–नायिकाओं के चित्रण के बहाने इस समाज के शोषण तथा पिछड़ेपन के कारणों की तलाश करते नजर आते हैं।

धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संस्कारों की जड़ें बहुत गहरी होती हैं और वह मानव की सोच को इस कदर कुंठित और असंवेदनशील बना देती हैं कि हम अमानवीय परम्पराओं को अपने स्वार्थ के लिये अपने जैसे मनुष्यों पर थोपते हैं और उन्हें समाज से सबसे निचले पायदान पर रहने के लिए प्रतिबंधित करते हैं। जबकि दलित इस देश की जनसंख्या का एक चौथाई हिस्सा है

लेकिन आजादी के 72 वर्ष बाद भी देश में उनके लिए ऐसा सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक माहौल तैयार नहीं हो पाया जिसमें उन्हें भी आजादी का एहसास हो सके।

अध्ययन के उद्देश्य

सदियों से राजा–प्रजा, अमीर–गरीब, ऊँच–नीच, शोषक–शोषित, पूँजीपति–सर्वहारा, वर्ग–जाति, धर्म–अधर्म के कुचक्र में उलझा हुआ समाज झूठी व्यवस्था, स्वाभिमान, दम्भ, मद, अहंकार, स्वार्थ आदि के वशीभूत मानव ही मानव का दुश्मन कब बन बैठा यह बात पता चलते–चलते बहुत देर हो चुकी थी। व्यवस्था की छत्र–छाया में सतयुग, द्वापर, त्रेता, कलियुग कोई भी समय ऐसा नहीं रहा जिसमें समाज की परिधि पर जीवन व्यतीत करने वाले मानव का शोषण एव दलन न हुआ हो। भगवान भी दस अवतार लेकर चले गये। महात्मा गाँधी, जवाहर लाल नेहरू, रवीन्द्रनाथ टैगोर, भीमराव आम्बेडकर, राजाराम मोहन राय, सन्त कबीर जैसे अनेक सन्त महात्मा एवं समाज सुधारकों ने सामाजिक कुव्यवस्था, दमन एवं शोषण के विरुद्ध लड़ते–लड़ते अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। फिर भी दलितों के शोषण एवं दमन की समस्या वर्तमान में समाप्त नहीं हुई है। आज भी दलित अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत हैं।

वर्तमान में प्रगतिवादी विचारधारा ने मनुष्य में नई सोच उत्पन्न की । 'आधुनिक दलित कहानी लेखन' इसी प्रगतिवादी विचारधारा के गर्भ से निःसृत है। ये दलित कहानियाँ केवल धर्म, जाति, लिंग, आदि भेद–भाव के कारण हो रहे शोषण का यथार्थ चित्रण ही नही करती हैं अपितु उनका सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, समाधान भी प्रस्तुत करती हैं। इन दलित कहानियों में व्यवस्था के प्रति केवल घृणा ही नहीं बल्कि विद्रोह के स्वर भी हैं। समाज के अन्तिम छोर पर नितान्त दलित, शोषित, एवं गरीबी का जीवन यापन कर रही मानवता की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक दुर्दशा का चित्रण करते हुए उसका समाधान प्रस्तुत करना इस शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य है। आधुनिक हिन्दी दलित कहानियों के माध्यम से समाज में दलित चेतना, सहयोग एवं संवेदना को विकसित करना हमारा मूल उत्स है।

साहित्यावलोकन

हिन्दी में कहानी का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में हुआ। 'इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी की पहली कहानी मानी जाती है जो लोक कथा के रूप में विकसित होती है।' [1] मुंशी प्रेमचन्द ने पहली बार कहानी को जासूसी एवं ऐय्यारी के इन्द्रजाल से निकालकर जन–सामान्य, दलित, शोषित, एवं कृषक जीवन को चित्रित किया। 'दूध का दाम', 'ठाकुर का कुआँ', सद्गति, कफ़न में चमारों के जीवन का यथार्थ चित्रण है । मुंशी प्रेमचन्द केवल चित्रण करते हैं, समाधान नहीं करते। इसीलिए कतिपय आलोचक इन्हें दलित कहानीकार कहने से कतराते हैं। मुंशी प्रेमचन्द के बाद सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की कहानी 'चतुरी चमार' शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'पापजीवी', 'मारी की औलाद', अमरकान्त की कहानी 'जिन्दगी और जोंक', आदि में दलित और शोषित वर्ग के जीवन की संघर्षगाथा है।

हिन्दी दलित कहानी में नवें दशक तक आते–आते विस्फोटक आक्रोश एवं स्वाभाविक प्रतिक्रिया के स्वर मुखरित होने लगते हैं। अब इन कहानियों में यथार्थ की संघर्षपूर्ण परिस्थितियों, सामाजिक विषमताओं, भेदभाव, अन्तर्विरोध का केवल चित्रण ही नहीं है अपितु इन विषम परिस्थितियों से दो–दो हाथ करने की प्रतिक्रिया भी है। डॉ0 श्योराज सिंह, सूरजपाल चौहान,[2] जयप्रकाश कर्दम, दयानन्द बटोही, ओमप्रकाश वाल्मीकि,[3] रत्नकुमार साभारिया, प्रेम कपाडिया, प्रहलाद चन्देल, मोहनदास नैमिषराय,[4] रमणिका गुप्ता, सुशीला टाकभौरे[5] आदि अनेक दलित कहानीकार हैं। उन्होंने दलित कहानी लेखन की परम्परा को प्रगतिवादी विचारधारा से सम्पृक्त कर उसे गति प्रदान की।

इन कहानियों चित्रित दलित चेतना को विभिन्न पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं, एवं शोधपत्रों के माध्यम से उत्तरोत्तर सर्वेक्षण एवं परीक्षण करने की कोशिश की जा रही है। 'हिन्दी दलित उपन्यासों में प्रतिरोधी मूल्य चेतना का अध्ययन'[6] , तेलुगू कहानी संग्रह 'रायाक्का मान्यम में दलित नारी चेतना का स्वर'[7], दलित पत्रिका 'मूक आवाज' में प्रकाशित 'ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में दलित संवेदना'[8], एवं 'हिन्दी दलित साहित्य में दलित जीवन मुक्ति का संघर्ष'[9] आदि समसामयिक शोध पत्र–पत्रिकाओं में न केवल दलितों की समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया गया है अपितु उसके समाधान की कोशिश भी की गयी है। किन्तु आज भी समाज की परिधि पर रहने वाले दलित अशिक्षा, अज्ञानता, बेरोजगारी का जीवन व्यतीत करने के लिए विवश हैं तथा अपने कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों से अनभिज्ञ समाज की मुख्य धारा से जुड़ पाने में असमर्थ हैं। साहित्यकारों के इस संवेदनशील परम्परा को अभी और दूर तक ले जाने की अत्यन्त आवश्यकता है तभी शोषण रहित एवं समतामूलक समाज की स्थापना हो सकती है।

आधुनिक कहानियों में दलित चेतना

वर्तमान दलित कहानियों में दलितों की पीड़ा की वास्तविक रुप से अभिव्यक्ति हुई है। अनेक तरह की विसंगतियों को कहानीकार अपनी कहानी के माध्यम से उठा रहे हैं। अस्पृश्यता, आरक्षण, वर्ण व्यवस्था जैसे मुद्दों को उठा कर वे आधुनिक समाज को समता के धरातल पर लाने की पुरजोर कोशिश कर रहे हैं। आधुनिक दलित कहानीकार न केवल दलितों की पीड़ा को अभिव्यक्ति दे रहे हैं, अपितु अपनी कहानियों के माध्यम से उनमें आत्मसम्मान की चेतना का भी संचार कर रहे हैं। ये कहानियाँ अपने परिवेश को जीवन्त रुप में प्रस्तुत करती हैं। इनके परिवेश में मट–मैलापन, भदेश, अनगढ़ता का चित्रण ही इनका सौन्दर्य है और इन्हीं से सहज मानवीय भावनाओं की कोमलता को अभिव्यक्ति मिल सकी है।

दलित कहानियाँ आम–आदमी के जीवन से जुड़ी कहानियाँ हैं और आम–आदमी की पीड़ा को अभिव्यक्त करती हैं। 'ये कहानियाँ शिक्षित–अशिक्षित, अर्द्धशिशित, सर्वहारा या मध्यमवर्गीय दलित जमातों, स्त्री–पुरूषों की त्रासदियों–संकटों व संघर्षों की कथा सुनाती हैं।'[10]

दलितों का संघर्ष सबसे अलग और उलझा हुआ है। ये आज भी बुनियादी मानवीय अधिकारों के लिए संघर्षरत हैं। जमीन से जुड़ी समस्यायें और उसके कारण होने वाले उत्पीड़न की अनगिनत कहानियाँ हैं। ये सीधे आर्थिक आय के साधन की बहाली या बेदखली से जुड़े मसले हैं। मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं हेतु संघर्ष ही दलित कहानियों की विषय वस्तु है, साथ ही समान अधिकारों की माँग को भी इन कहानियों में उठाया गया है। इन कहानियों का कथानक 'उठो, जागो और संघर्ष करो' की तर्ज पर है। इनका कथानक दलित मानव की चेतना की प्रत्यूषा की भाँति हैं जिसमें एक नयापन है जो सदियों पुराना होकर भी नगण्य था, जिसे दलित रचनाकारों ने अपने अनुभव की प्रासंगिता पर अभिव्यक्ति दी है।

दलित कहानी सृजन की प्रतिबद्धताओं की ओर संकेत करते हुए रत्नकुमार साँभरिया लिखते हैं– ''दलित कहानी लिखते समय अधिक बौद्धिकता, पारंगतता, कला कौशल की नहीं, सहजता, संजीदगी और संप्रेषणीयता चाहिए। अगर दलित कहानी लिखने का मानस बनाया गया है तो उसका निर्वाह भी उसी निष्ठा, ईमानदारी और संवेदनशीलता से हो।'' [11]

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की रचनाओं में चित्रित पात्र इसी दुनिया के लोग हैं। उनके आस–पास के लोग उनकी कहानियों के पात्र हैं। उनकी कहानियों की विषय वस्तु उनके भोगे गये यथार्थ के अनुभवों का निचोड़ है, जो अपनी सम्पूर्ण संवेदना के साथ कहानियों में चित्रित हुआ है। उनकी कहानियों के पात्र उनके अपने अनुभव एवं परिवेश के हैं। 'सलाम' का हरीश हो या कमल उपाध्याय, 'अंधड़' कहानी का एस0लाल हो या 'कहाँ जाए सतीश' का पंत परिवार, 'जिनावर' की बहु जी हो या 'अम्मा' कहानी की केन्द्रीय पात्र अम्मा, ये सभी दलित समाज की भीतरी पर्तों में विद्यमान हैं। घोर अशिक्षा, गरीबी, यातना, प्रताड़ना, जातीय हीनताबोध के बावजूद दलित समाज में जीवन मूल्यों की नैतिकता एवं मानवीय संवेदनाओं की प्रत्याशा में पुरजोर संघर्ष करते हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि दलितों की दयनीय स्थिति दिखाने की अपेक्षा दूरदृष्टि से वर्चस्व स्थापित करने हेतु संघर्षरत् दलितो को अपनी कहानी का पात्र बनाते हैं। उनकी कहानियाँ सिर्फ कहानियाँ नहीं हैं बल्कि वाल्मीकि जी के विचारों की संवाहक हैं। अपने इसी चिर–परिचित क्रान्तिकारी तेवर को उन्होंने 'सलाम' कहानी के माध्यम से व्यक्त किया है। इसमें ब्राह्मणों द्वारा स्थापित 'सलाम' प्रथा का मुखर विरोध हुआ है और इसी के साथ दलितों को उनके अस्तित्व का बोध भी कराया गया है। हिन्दु धर्मशास्त्रों पर तीखे प्रहार के साथ ही यह कहानी अन्ततः मानवीय मूल्यों की तलाश करती नजर आती है। कहानी का नायक हरीश शिक्षित एवं नौकरीशुदा दलित युवक है। गाँव की परम्परा के अनुसार विवाह पश्चात् नवदम्पति को सलाम के लिए सवर्णों के यहाँ जाना होता है। हरीश इसका विरोध करते हुए कहता है– ''मैं अपरिचितों के दरवाजे सलाम करने नहीं जाऊँगा।''[12] उसके ससुर जुम्मन उससे कहते हैं यह बाप दादों की रीत है। गाँव समाज में रहना है तो नियम कायदे तो मानने ही होंगे इस पर हरीश कहता है– ''आप चाहे जो समझें मैं तो इस रिवाज को आत्मविश्वास तोड़ने की साजिश मानता हूँ।''[13]

दासता के गर्त में गहराई तक धँसे दलितों में शिक्षा के प्रभाव से नकार का जो साहस आया है वह अद्भुत है। सदियों तक गन्दगी भरे माहौल में रहने को विवश दलित वर्ग को सवर्ण समाज के लोग बड़ी हिकारत से देखते हैं। 'सलाम' में कमल की माँ कमल को समझाते हुए कहती है– ''बेटे, इनके संस्कार गलत हैं, ये छोटे लोग हैं। इनके साथ बैठने से बुरे विचार मन में पैदा होते हैं।''[14] और इनके प्रति उत्तर में कमल के रूप में स्वयं वाल्मीकि जी समाज से पूछते हैं कि ''तुम कभी उनके घर गई हो? उनसे मिली हो? फिर कैसे जानती हो कि वे बुरे लोग हैं।''[15] इस प्रश्न को वाल्मीकि ने पूरी संवेदनशीलता के साथ उभारा है। एक गाँव के लोग अपने ही गाँव की दलित की बेटी के लिए किस तरह अश्लील शब्दों का प्रयोग करते हैं जिसे मानवीय तो किसी भी स्थिति में नहीं कहा जा सकता– ''इतनी जोरदार लौड़िया लेके जा रे हैं सहर वाले..... अरे लौड़िया को किसी गाँव में ब्याह देता तो म्हारे जैसों का भी कुछ भला हो जाता।''[16] यह है इस महान भारत का सच जिसके लिए कहा जाता है कि यहाँ स्त्रियों की पूजा होती है। संभवतः भारतीय गाँवों में दलित स्त्री की पूजा यौन शोषण एवं बलात्कार के रूप में होती है। उन मनीषियों को लज्जा नहीं आती, वे पूर्ण संवेदनहीन हो जाते हैं।

इस प्रकार यह कहानी सहज दलित या जाति से उठकर मनुष्य के सवाल पर पहुँचती है। यह कहानी मनुष्य में सोच के परिवर्तन के माध्यम से जाति एवं धर्म से ऊपर उठकर मनुष्यता के सवालों तक ले जाती है। यह कहानी ब्राह्मण विरोधी नहीं अपितु ब्राह्मणवादी कुव्यवस्था का पुरजोर विरोध करती है। समाज में ऊँच–नींच की खाई को गहरी करने वाली ब्राह्मणवादी व्यवस्था को ध्वस्त करती है।

वाल्मीकि जी की कहानी 'गोहत्या' में गाय और नीच जाति में जन्म लेने वाले मनुष्य के मध्य अन्तर को बताया गया है। मनुष्य को पशु गाय से भी हेय बताया गया है। ब्राह्मण वादी पाखण्ड के माध्यम से मुखिया सुक्का की पत्नी को अपने हवस का शिकार बनाना चाहता है किन्तु सुक्का इसका पुरजोर विरोध करता है और ब्राह्मणवादी ढोंग की जड़ें हिला देता है। 'शवयात्रा' कहानी में घोर अमानुषिक दर्द को उकेरने की कोशिश की गयी है। वे आम्बेडकर जी की विचारधारा को अभिव्यक्ति देते हुए इस कहानी में कहते हैं कि 'जातीय व्यवस्था का घोर अहंवादी व्यक्ति बाबा साहब के आदर्श का अनुपालन नहीं कर सकता।' क्योंकि वे जातीयता की नहीं अपितु अमानवीयता की दुर्धर्ष व्यवस्था को तोड़ना चाहते थे। दलित आन्दोलन का उद्देश्य केवल जातीय व्यवस्था को ही ध्वस्त करना नहीं है अपितु मनुष्य के हृदय में संवेदना का संचार भी है। बिना संवेदना के दलित आन्दोलन अधूरा है। दलितों की उपजातीय कुव्यवस्था को उजागर करती हुई यह कहानी हमारे समक्ष अनेक यक्ष प्रश्न खड़े करती है। व्यक्ति की मृत्यु पर भी लोग किस तरह जाति व्यवस्था के मकड़जाल में फँसकर दुःखी परिवार के प्रति संवेदना के दो शब्द भी नहीं बोल सकते यह एक

उदाहरण से समझा जा सकता है–''बापू और देर मत करो–––उन दोनों ने कपड़े में लिपटे जलोनी के शव को उठा लिया था। सन्तों और सरोज के लिये इस रिवाज़ को तोड़ने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचा था। सन्तों ने लकड़ियों के गट्ठर सिर पर रखकर हाथ मे आग और हाड़ उठा लिया। पीछे–पीछे सरोज उपलों से भरा टोकरा लिये चल पड़ी।''[17] उसी गाँव की चमारिनें शव यात्रा को देखकर दुःखी तो होती हैं किन्तु शोक संतप्त परिवार के प्रति सांत्वना के दो शब्द भी नहीं बोल पातीं। यहाँ संवेदना के समस्त आयाम जातीय अहं के सम्मुख तिरोहित हो जाते हैं। संवेदना पर जातीय व्यवस्था हावी हो जाती है। जातीयता मानवीयता के गले घोंट देती है।

'घुसपैठिए' कहानी में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने जातिवाद के जहर के कारण शैक्षिक संस्थानों में व्याप्त भ्रष्टाचार और मानवीय असंवेदनशीलता उजागर किया है। इसमें अपने ही देश में जाति व्यवस्था के शिकार दलितों की पीड़ा का यथार्थ चित्रण है। यह कहानी दलित साहित्य की प्रासंगिकता को सार्थक बनाती हुई मानव संवेदना को पुनः जागृत करने का प्रयास करती है। इस कहानी में मेडिकल छात्र सुभाष सोनकर को दिनभर छात्रावास में पिटाई होने के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है और बड़ी सफाई से इसे आत्महत्या घोषित कर दिया जाता है। दलित होने के कारण उसे इतना शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जाता है कि वह मृत्यु को जिन्दगी से बेहतर समझने लगता है।

यह कहानी मेडिकल कॉलेजों की उस तुच्छ एवं मानवीय असंवेदनशीलता को दर्शाती है, जहाँ आरक्षण से आये हुए छात्र –छात्राओं को 'घुसपैठिए' समझ लिया जाता है और उन पर धर्म, जाति का आरोप लगाकर उनकी प्रतिभा पर प्रश्न चिह्न खड़े किये जाते हैं और तरह–तरह की शारीरिक और मानसिक प्रताड़नाएँ दी जाती हैं। उन्हें दोयम दर्जे का समझकर उनके साथ असमानता का व्यवहार किया जाता है, जिससे उनमें निराशा इस हद तक फैल जाती है कि सुभाष सोनकर की तरह आत्म हत्या के लिए मज़बूर हो जाते हैं। उनके माँ–बाप के सपने चकना चूर हो जाते हैं, पुनः कोई और दलित इस शिक्षण संस्था में जाने हिम्मत भी नहीं जुटा पाता । यह कहानी मार्मिकता के साथ एक सन्देश देती है कि जाति, वर्ग, क्षेत्र, भाषा या अमीर – गरीब के आधार पर मनुष्यता को रौंदना नहीं चाहिए।

'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' कहानी में वाल्मीकि जी महाजनों द्वारा किये जाने वाले छल–बल, झूठ–कपट, धोखा, ठगी आदि भ्रष्टाचारों एवं अत्याचारों का यथार्थ चित्रण करते हैं। कहानी का पात्र सुदीप जब अपने माँ–बाप को पहली तनख्वाह देता है तो उसके माता–पिता उसे ऐसे माथे से लगाकर चूमते हैं जैसे कोई देवता का प्रसाद मिल गया हो। किन्तु उसके हर महीने के पैसे महाजन अपने दिये गये उधार के बदले में ब्याज पर ब्याज लगाकर वसूलता रहता है। महाजन कहता है–' मैने तेरे बुरे बखत में मदद करी थी। इब तू ईमानदारी से सारा पैसा चुका देना। सौ रूपये पर हर महीने पच्चीस रूपये ब्याज बनते हैं चार महीने हो गये ब्याज ब्याज के हो गये पच्चीस चौका डेढ़ सौ।'' अन्त में सुदीप का पिता परेशान होकर कहता है– ''कीड़े पड़ेंगे चौधरी –––कोई पानी देने वाला भी नहीं बचेगा।''[18] इसी तरह दलित, गरीब, एवं निम्न जातियों का शोषण महाजन, साहूकार, और ब्राह्मण इस हद तक करते हैं कि उन्हें अपने जीवन व्यर्थ प्रतीत होने लगता है। वे कर्ज एवं ब्याज के बोझ तले मृत्यु तक को गले लगा लेते हैं।

मोहनदास नैमिषराय की कहानी 'आवाज़ें' में ठाकुरों की बात की अवहेलना करना दलित बस्तियों के लिये इतना महंगा पड़ जाता है कि वे बस्तियाँ हड्डियों के ढेर मे बदल जाती हैं। सामन्ती मानसिकता इंसानियत पर भारी पड़ जाती है। ठाकुरों की निगाहों में दलित बस्ती के लोग इंसान नहीं अपितु जमीन पर रेंगने वाले कीड़े से भी बदतर हैं।

'एक अख़बार की मौत' मोहनदास नैमिषराय की सर्वश्रेष्ठ कहानी है। अख़बार को 'प्रजातंत्र का चतुर्थ स्तम्भ' कहा जाता है। इसका सम्पादक एक ब्राह्मण है जो घटनाओं एवं समस्याओं की सत्यता को संवेदनशीलता से अभिव्यक्त करने के बजाय केवल जातिगत आधार पर ही अभिव्यक्त करता है। इससे लोकतन्त्र ख़तरे में आ जाता है।

सूरजपाल चौहान की कहानी 'परिवर्तन की बात' वास्तव में दलितों में चेतना का संचार करने वाली एक प्रतिनिधि कहानी है। इस कहानी का नायक अपने पुस्तैनी कार्य –मुर्दा पशुओं को उठाना, मैला ढोना, सफाई आदि घृणित कार्यों के करने से जब मना करता है तो उसके तमाम रास्ते बन्द कर दिये जाते हैं। उसे अनेक सामाजिक एवं आर्थिक प्रताड़नाएँ झेलनी पड़ती हैं। यह मार्मिक कहानी पाठक के अन्तस को झकझोर कर रख देती है।

डॉ0 सुशील टाकभौरे की कहानी 'सिलिया' केवल दलित विमर्श ही नहीं अपितु स्त्री विमर्श पर प्रकाश डालने वाली एक उच्चकोटि की कहानी है। इस कहानी की पात्र सिलिया अपने सामाजिक उत्थान के लिए दृढ़ संकल्प करती है। उसे भंगी होने के कारण अपने सहेली के घर भी पानी पीने नहीं दिया जाता। यह घटना उसके अन्तर्मन को झकझोर देती है और वह अपने समाज पर बीतने वाली पीड़ा को गहराई से अनुभव करती है। 'टूटता वहम' कहानी में जातीय प्रपंच और छल–छद्म का गहराई से चित्रण हुआ है। इसकी नायिका एक अध्यापिका है, कहने को तो लोग उन्हें भाभी जी, मिस जी आदि सम्मानसूचक शब्दों से सम्बोधित करते हैं किन्तु जब वे सभी को अपने घर खाने का निमन्त्रण देती हैं तब शूद्र होने के कारण लोग उनके घर खाना खाने से इनकार कर देते हैं। यहाँ पर जातिगत भेद भाव एवं अस्पृश्यता कथा नायिका के अन्तर्मन को उद्वेलित करती है।

प्रेम कपाड़िया की कहानी 'हरिजन' देवदासी प्रथा की कलई उज़ागर करती है। धर्म की आड़ में किस प्रकार नारी अस्मिता को तार–तार किया जाता है, मंदिरों में वासना का नंगा खेल खेला जाता है, मोक्ष के नाम पर यौन शोषण किया जाता है। यह कहानी ऐसे ही ज्वलन्त समस्याओं पर प्रकाश डालती है।

रत्न कुमार सांभरिया कहानी 'शती' का पात्र पानाराम मेहतर खुद शोषण करने वाले मुखिया जसवीर के बेटे के शव को उठाने से मना कर देता है और उसके मरे

हुए बेटे के ऊपर थूकता है और आगे बढ़ जाता है। पानाराम मेहतर का प्रतिकार वर्तमान दलितों को शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने का संदेश देता है। इनकी कहानी 'चमरवा' में अस्पृश्यता इस तरह हावी है कि कहानी का पात्र दरपन जिन अछूतों के यहाँ कथा कहकर अपनी जीविका चलाता है, अपनी पत्नी के मरने पर भी उसे भय है कि कहीं वे इसे छू न दें।

इसी प्रकार कावेरी ,द्वारा लिखित 'सुमंगली', डॉ0 दयानन्द बटोही की कहानी 'सुरंग', रूपनारायण सोनवीर की कहानी 'जहरीली जड़ें', अजय नावरिया की कहानी 'आटे सने हाथ', डॉ0 रजतरानी मीनू की कहानी 'वे दिन' आदि दलितों के सामाजिक, आर्थिक विद्रूपता का सफलता पूर्वक चित्रण करने वाली कहानियाँ हैं। दलितों का सामाजिक, आर्थिक शोषण विविध रूपों में तो होता ही है साथ ही यदि वह दलित स्त्री है तो सामाजिक, आर्थिक शारीरिक, मानसिक आदि बहमुखी शोषण की पराकाष्ठा की शिकार होती है। डॉ0 कुसुम वियोगी की कहानी 'आटे सने हाथ' तथा डॉ0 रतनरानी मीनू की कहानी 'वे दिन' इसी समस्या की ओर इशारा करती हैं।

निष्कर्ष

आधुनिक दलित कहानीकारों ने इस पीड़ा को स्वयं अनुभव किया है, इसलिए उनकी कहानियों में जाति, धर्म, वर्ग, वाह्याडम्बर, अमीरी, गरीबी, अस्पृश्यता आदि की समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया गया है। उनकी कुछ कहानियों में दलित अब केवल शोषित और पीड़ित ही नहीं है बल्कि वह विरोध करना भी सीख गया है। इस मायने में ये लेखक मुंशी प्रेमचन्द आदि से भी प्रगतिशील नजर आते हैं। आधुनिक दलित कहानीकारों की कहानियों में यह तथ्य भलीभाँति परिलक्षित होता है कि जातिवाद और अस्पृश्यता का भेदभाव केवल सामाजिक सम्बन्धों में ही दरार पैदा नहीं करता अपितु मानव को संवेदनहीन और क्रूर बना देता है। इसलिए यदि समस्त मानव को समतामूलक मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित करना है तो वर्ण, जाति, अस्पृश्यता, वाह्याडम्बर एवं कुरीतियों को यथाशीघ्र नष्ट करना होगा। लोकतान्त्रिक और समतामूलक समाज स्थापित करने का यही एक मात्र विकल्प है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *http.www.shodhganga.inflibnet.ac.in.ch-2pdf,pg no.43*
2. *नैमिषराय, मोहनदास(जन्म–5 सित0, 1949), कहानी संग्रह–आवाजें।*
3. *बाल्मीकि, ओमप्रकाश (जन्म–30 जून, 1950) कथा संग्रह– सलाम, घुसपैठिए, सफाई देवता, छतरी।*
4. *चौहान, सूरजपाल (जन्म–20 अप्रैल,1955), कहानी संग्रह–हैरी कब आयेगा।*
5. *टाकभौरे शुशीला(जन्म–4 मार्च,1954), कहानी संग्रह– टूटता वहम।*
6. *सिंह अनुराधा (2015),हिन्दी दलित उपन्यासों में प्रतिरोधी मूल्य चेतना का अध्ययन, दयालबाग, इजूकेशनल इन्स्टीट्यूट आगरा,*
7. *अरुणा डी0 (फरवरी 2018), 'रायक्का मान्यम में दलित नारी चेतना के स्वर' तेलगू कहानी संग्रह, राउन्ड टेबल इण्डिया, स्रोतः hindi. Roundtableindia.co.in*
8. *डॉ0 जी0 राजू (अगस्त 2014), ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में दलित संवेदना, मूक आवाज में प्रकाशित, पाण्डिचेरी*
9. *कामिनी, (2017), हिन्दी दलित साहित्य दलित जीवन मुक्ति का संघर्ष, विश्वहिन्दीजन, स्रोतः http//vishwahindijan.blogspot.com/2017/05*
10. *गुप्ता रमणिका, सम्पादक, (2010 ई0), भारतीय दलित कथाकोश, यश पब्लिकेशन, दिल्ली, पृष्ठ–6*
11. *साभरिया रत्नकुमार, (2011), दलित समाज की कहानियाँ, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्टब्यूटर्स, प्राइवेट लि0, पृष्ठ–14*
12. *बाल्मीकि, ओमप्रकाश (2004), सलाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–16*
13. *वही, पृष्ठ–1*
14. *वही, पृष्ठ–15*
15. *वही, पृष्ठ–15*
16. *वही, पृष्ठ–13*
17. *मुद्राराक्षस (2004 ई0), नई सदी की पहचान–श्रेष्ठ दलित कहानियाँ, पृष्ठ–12*
18. *बाल्मीकि, ओमप्रकाश (2004), सलाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–84*